राजनीति के बिगड़े बोल

भारतीय राजनीति में भाषा की ऐसी गिरावट शायद पहले कभी नहीं देखी गयी। ऊपर से नीचे तक सड़कछाप भाषा ने अपनी बड़ी जगह बना ली है। ये ऐसा समय है जब शब्द सहमे हुए हैं, क्योंकि उनके दुरूपयोग की घटनाएं लगातार जारी हैं। राजनीति जिसे देश चलाना है और देश को रास्ता दिखाना है,वह खुद गहरे भटकाव की शिकार है। लोग निरंतर अपने ही बड़बोलेपन से ही मैदान जीतने की जुगत में हैं और उन्हें लगता है कि यह 'टीवी समय' उन्हें चुनावी राजनीति में स्थापित कर देगी। दिखने और बोलने की संयुक्त जुगलबंदी ने टीवी चैनलों को कच्चा माल उपलब्ध कराया हुआ है तो राजनीति में जल्दी स्थापित होने की त्वरा में लगे नए नौजवान भी भाषा की विद्रूपता का ही अभ्यास कर रहे हैं।

यह गिरावट चौतरफा है। बड़े रास्ता दिखा रहे हैं, नए उनसे सीख रहे हैं। टीवी और सोशल मीडिया इस विद्रूप का प्रचारक और विस्तारक बना हुआ है। न पद का लिहाज, न आयु का, ना ही भाषा की मर्यादा- सब इसी हमाम में नंगे होने को आतुर हैं। राजनीति से व्यंग्य गायब है, हंसी गायब है, परिहास गायब है- उनकी जगह गालियों और कटु वचनों ने ले ली है। राजनीतिक विरोधी के साथ शत्रु की भाषा बोली और बरती जा रही है। यह संकटकाल बड़ा है और कठिन है।

पहले एकाध आजम खां, मायावती और आदित्यनाथ थे। आज सब इन्हें हटाकर खुद को उनकी जगह स्थापित करना चाहते हैं। केंद्रीय राजनीति के सूरमा हों या स्थानीय मठाधीश कोई भाषा की शुचिता का पालन करता नहीं दिखता। जुमलों और कटु वचनों ने जैसी जगह मंचों पर बनाई, उसे देखकर हैरत होती है। बड़े पदों पर आसीन राजनेता भी चुनावी मोड में अपने पद की मर्यादा भूलकर जैसी टिप्पणियां कर रहे हैं, उसका मूल्यांकन समय करेगा। किंतु इतना तो यह है कि यह समय राजनीति भाषा की गिरावट का समय बन चुका है।

आलोचना, विरोध, षडयंत्र का अंतर भी लोग भूल गए हैं। आलोचना अगर स्वस्थ तरीके से की जाए, अच्छी भाषा में की जाए तो भी प्रभाव छोड़ती है। अच्छी भाषा में भी कड़ी से कड़ी आलोचना की जा सकती है। किंतु इस टीवी समय में राजनेता की मजबूरी कुछ सेकेंड की बाइट में बड़ा प्रभाव छोड़ने की रहती है। ऐसे में वह कब अपनी राह से भटक जाता है उसे खुद भी पता नहीं लगता। भाषा की गिरावट यह दौर आने वाले समय में भी रूकने वाला नहीं है। टीवी से सोशल मीडिया, फिर मोबाइल टीवी तक यह गिरावट जारी ही रहने वाली है। हमारे समय का संकट यह है कि राजनीति में आर्दश हाशिए पर हैं। शुचिता और पवित्रता के सवाल राजनीति में बेमानी लगने लगे हैं। जिनकी वाणी पर देश मुग्ध रहा करता था ऐसा राजनेता न सिर्फ खामोश हैं बल्कि काल के प्रवाह में वे अप्रासंगिक भी लगने लगे हैं।

संसद से लेकर विधानसभाओं तक में बहस का स्तर गिर रहा है। नेता सदनों से भाग रहे हैं और मीडिया पर सारी जंग लड़ने पर आमादा हैं।

ऐसे कठिन समय में राजनेताओं, राजनीतिक दलों और राजनीतिक विश्लेषकों को नई राह तलाशनी होगी। उन्हें एक नया पथ बताना होगा जिसमें स्वस्थ संवाद की बहाली हो। मीडिया की व्यापक मौजूदगी, कैमरों की चकाचौंध और पल-पल की कवरेज के बावजूद हमारे चुनाव अभियानों से गंभीरता गायब है, मुद्दे गायब हैं और लोगों का दर्द गायब है। आरोप-प्रत्यारोप और दूसरे से बेहतर मैं, सारी बहस इसी पर टिकी है। यह गजब है ईमानदारी, भ्रष्टाचार, जातिवाद और परिवादवाद जैसे सवालों पर राजनीतिक दलों ने शीर्षासन कर दिया है। कोई दल आज प्रत्याशी चयन तक में शुचिता का संकल्प नहीं ले सकता। दलबदल तो थोक में जारी है। सरकार की आज दूसरे दलों में जाकर शामिल हो जाती है। ऐसे में पार्टी या विचारधारा के सवाल बहुत पीछे छूट गए हैं। काडर पीछे छूट गया है और जीत सकने वाले उम्मीदवारों का हर दल में स्वागत है। उनका अतीत राजनीतिक दलों के मूल्यांकन का विषय नहीं है। अब सिर्फ दलों के झंडे अलग हैं और मैदानी राजनीति में उनका आचरण कमोबेश एक सा ही है। ऐसे में ये उम्मीदवार जीतकर भी एक बड़ी पराजय सरीखे ही हैं। सारे सिद्धातों की बलि व्यवहारिक राजनीति के नाम पर चढ़ाई जा रही है। राजनीतिक दलों में गिरावट की स्पर्धा है। कौन ज्यादा गिर सकता है, इसकी होड़ है। शुचिता और पवित्रता के शब्द मैदानी राजनीति के लिए अछूत ही हैं। राजनीति के अपराधीकरण के खिलाफ बोलते हुए राजनेता अपने ही दल के अपराधियों को महिमामंडित करने से नहीं चूकते। यहां तक की आलोचना का केंद्र रहा व्यक्ति दल बदल करते ही नए दल के लिए पवित्र हो जाता है।

डा. राममनोहर लोहिया शायद इसीलिए कहते थे "लोकराज लोकलाज से चलता है।" लेकिन हमने देखा उनके अनुयायियों ने लोकलाज की सारी सीमाएं तोड़ दीं। वहीं पं. दीनदयाल उपाध्याय भी हमें चेताते हैं कि अगर राजनीतिक दल गलत उम्मीदवारों को आपके बीच भेजते हैं तो राजनीतिक दलों की गलती ठीक करना जनता का काम है। वे पोलिटिकल डायरी नामक पुस्तक में लिखते हैं-"कोई बुरा उम्मीदवार केवल इसलिए आपका मत पाने का दावा नहीं कर सकता कि वह किसी अच्छी पार्टी की ओर से खड़ा है। बुरा-बुरा ही है और दृष्ट वायु की कहावत की तरह वह कहीं भी और किसी का भी हित नहीं कर सकता। पार्टी के हाईकमान ने ऐसे व्यक्ति को टिकट देते समय पक्षपात किया होगा या नेकनियती बरतते हुए भी वह निर्णय में भूल कर गया होगा। अत: ऐसी गलती सुधारना उत्तरदायी मतदाता का कर्तव्य है।"

आज जबकि राजनीति के मैदान कीचड़ से सने हैं, तो भी हमें इसकी सफाई के लिए कुछ जतन तो करने ही होगें। चुनाव एक अवसर होते हैं जब राजनीतिक दलों और राजनीति के शुद्धिकरण की सोच रखने वालों को इसकी शुचिता पर सोचना ही चाहिए। यह पहल हमने आज नहीं की तो कल बहुत देर हो जाएगी।

(लेखक माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल में जनसंचार विभाग के अध्यक्ष हैं)
मोबाइल: 09893598888

ई-मेल: 123dwivedi@gmail.com

http://sanjayubach.blogspot.com/
http://sanjaydwivedi.com/
Attachments area